Full paper for presentation--

1. प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का भारतीय ज्ञान परम्परा के सन्दर्भ में योगदान

प्राकृत– और अपभ्रंश और आधुनिक हरियाणवी: भारतीय ज्ञान-परम्परा का भाषिक परिप्रेक्ष्य

Prof Ramanaatha Pandey,
Parshwanath vidyapeeth, Varanasi
rnpmsuoi2gmail.com, 9998281366

भूमिका

भारतीय ज्ञान-परम्परा की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी बहुभाषिकता, लोकानुभव से जुड़ी चेतना तथा समावेशी दृष्टि में निहित है। जहाँ संस्कृत ने शास्त्रीय, दार्शनिक और वैदिक परम्परा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया, वहीं पालि, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी भाषाओं ने ज्ञान को जनसामान्य के जीवन से जोड़ा। इन भाषाओं के माध्यम से धर्म, दर्शन, नैतिकता, साहित्य और जीवन-दृष्टि के तत्त्व समाज के व्यापक वर्गों तक पहुँचे और लोकजीवन का अभिन्न अंग बने।

वास्तव में भारतीय ज्ञान-परम्परा कभी भी केवल संस्कृत-केन्द्रित नहीं रही। यह परम्परा बहुस्तरीय, बहुभाषिक और जनोन्मुखी रही है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं ने इस परम्परा में सेतु का कार्य करते हुए शास्त्रीय विचारों को लोकबोधगम्य बनाया। इनके माध्यम से दार्शनिक, नैतिक, साहित्यिक तथा आध्यात्मिक विचार न केवल प्रसारित हुए, बल्कि जीवन-पद्धति के रूप में आत्मसात भी किए गए। इसी भाषिक निरन्तरता के परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं—विशेषतः हरियाणवी—का विकास संभव हुआ।

1. भारत की भाषाई परम्परा में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का स्थान

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भारतीय भाषाई विकास की स्वाभाविक और क्रमिक कड़ियाँ हैं। पालि बौद्ध परम्परा की प्रमुख आधारभाषा के रूप में विकसित हुई। इसमें बुद्ध के उपदेशों को संकलित किया गया, जिससे बौद्ध दर्शन केवल मठों तक सीमित न रहकर समाज के सामान्य वर्गों तक पहुँचा।

प्राकृत भाषाएँ—विशेषतः अर्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री—जैन परम्परा तथा लोक-साहित्य की सशक्त अभिव्यक्ति बनीं। इन भाषाओं में रचित साहित्य ने नैतिकता, अहिंसा और आत्मसंयम जैसे मूल्यों को जनसामान्य तक पहुँचाया।

अपभ्रंश ने प्राकृत से आगे बढ़ते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। यह भाषा संस्कृत और लोकभाषाओं के बीच एक संक्रमणकालीन सेतु के रूप में उभरी। इस प्रकार पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ शास्त्रीय परम्परा और लोकजीवन के बीच संवाद स्थापित करती हैं तथा भारतीय ज्ञान-परम्परा की भाषिक निरन्तरता को सुनिश्चित करती हैं।

2. प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का धार्मिक–दार्शनिक योगदान

पालि, अर्धमागधी और शौरसेनी जैसी प्राकृत भाषाओं ने भारतीय धार्मिक–दार्शनिक परम्परा को जनसुलभ बनाने में केन्द्रीय भूमिका निभाई। पालि भाषा में रचित बौद्ध त्रिपिटक—विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक—में बुद्ध के उपदेश सरल और संवादात्मक शैली में प्रस्तुत किए गए। मध्यम मार्ग, करुणा, प्रज्ञा और अहिंसा जैसे सिद्धान्त भिक्षुओं के साथ-साथ गृहस्थ समाज तक भी पहुँचे।

इसी प्रकार अर्धमागधी प्राकृत में रचित जैन आगम साहित्य—जैसे आचारांग सूत्र और सूत्रकृतांग—में अहिंसा, अपरिग्रह और आत्मसंयम का गहन विवेचन किया गया। इन ग्रन्थों की सहज भाषा के कारण गृहस्थ समाज जैन नैतिक मूल्यों से सीधे जुड़ सका।

शौरसेनी प्राकृत में रचित नाट्य और कथा-साहित्य ने धर्म और दर्शन को कथात्मक एवं संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया, जिससे दार्शनिक विचार लोकजीवन का अंग बने। इस प्रकार प्राकृत भाषाओं ने धार्मिक–दार्शनिक सिद्धान्तों को शास्त्रों से निकालकर जनचेतना में प्रतिष्ठित किया।

3. ज्ञान का लोकतंत्रीकरण: प्राकृत भाषाओं की ऐतिहासिक भूमिका

प्राकृत भाषाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान ज्ञान का लोकतंत्रीकरण है। जहाँ संस्कृत मुख्यतः शिक्षित और विद्वान वर्ग तक सीमित थी, वहीं प्राकृत ने ज्ञान को सामान्य जन के लिए सुलभ बनाया। गृहस्थ, व्यापारी, श्रमिक और स्त्रियाँ—जो संस्कृत-शिक्षा से वंचित थीं—प्राकृत के माध्यम से ज्ञान-परम्परा से जुड़ सकीं।

जैन आगम साहित्य का अर्धमागधी में रचा जाना इसका श्रेष्ठ उदाहरण है, जिससे नैतिक सिद्धान्त दैनिक जीवन में उतरे। इसी प्रकार बौद्ध उपदेश पालि भाषा में होने के कारण व्यापारी, यात्री और स्त्रियाँ भी संघ के प्रवचनों से लाभान्वित हुईं।

प्राकृत गाथा-साहित्य में स्त्रियों, व्यापारियों और सामान्य जन के अनुभवों का चित्रण मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान और साहित्य केवल अभिजात वर्ग तक सीमित नहीं रहा। इस प्रकार प्राकृत भाषाओं ने भारतीय ज्ञान-परम्परा को सामाजिक रूप से समावेशी बनाया।

4. प्राकृत साहित्य की साहित्यिक समृद्धि

प्राकृत भाषाओं ने भारतीय साहित्य को भाव, भाषा और शैली—तीनों स्तरों पर समृद्ध किया। गाथा साहित्य, विशेषतः गाथा सप्तशती, प्रेम, विरह, प्रकृति और लोकजीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करता है।

कथा-साहित्य और उपाख्यानों—विशेषतः जैन कथाओं—ने नैतिक शिक्षा को रोचक कथात्मक शैली में प्रस्तुत किया। नीति और उपदेशात्मक रचनाओं में संयम, करुणा और नैतिकता को जीवन के व्यावहारिक आदर्शों के रूप में स्थापित किया गया।

प्राकृत साहित्य ने भारतीय काव्यशास्त्र की रस-परम्परा को भी प्रभावित किया, विशेषतः शृंगार, करुण और शान्त रस के विकास में। इस प्रकार प्राकृत साहित्य ने काव्य को लोकानुभव से जोड़कर भारतीय साहित्यिक परम्परा को सुदृढ़ किया।

5. अपभ्रंश भाषा का योगदान (उदाहरण सहित स्पष्ट व्याख्या)

अपभ्रंश भाषा भारतीय भाषिक परम्परा में प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में विकसित हुई। यह वह अवस्था है जहाँ प्राकृत की भाषिक सरलता और लोकधर्मिता आगे बढ़कर आधुनिक भाषाओं की संरचना का आधार बनती है। अपभ्रंश साहित्य—विशेषतः जैन मुनियों तथा सिद्ध कवियों की रचनाएँ—भारतीय ज्ञान-परम्परा को लोकजीवन से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनीं। इन रचनाओं में भक्ति, वैराग्य, नैतिकता और आत्मसंयम जैसे गूढ़ आध्यात्मिक विषयों को अत्यन्त सरल, प्रवाहमयी और जनसुलभ भाषा में प्रस्तुत किया गया।

(i) भक्ति और नैतिक चेतना :

अपभ्रंश काव्य में बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्ड और दिखावे के स्थान पर आन्तरिक साधना, आत्मसंयम और आत्मबोध पर विशेष बल दिया गया। उदाहरणस्वरूप, जैन अपभ्रंश साहित्य में मुनियों द्वारा रचित काव्यों में अहिंसा, संयम

और वैराग्य को जीवन का परम लक्ष्य बताया गया, जिससे साधना का मार्ग सामान्य गृहस्थ के लिए भी सहज बना। इसी प्रकार सिद्ध कवियों की अपभ्रंश रचनाओं में गुरु-भक्ति, आत्मानुभूति और अंतःशुद्धि पर जोर दिया गया। सरल भाषा और भावप्रधान शैली के कारण यह साहित्य केवल साधु-संन्यासियों तक सीमित न रहकर गृहस्थ समाज में भी व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ।

(ii) आधुनिक भाषाओं की आधारशिला :

अपभ्रंश ने आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की आधारशिला रखी। भाषा की ध्वनि-रचना, शब्दावली और वाक्य-विन्यास में जो परिवर्तन अपभ्रंश में दिखाई देते हैं, वही आगे चलकर हिंदी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी आदि भाषाओं की विशेषताएँ बने। उदाहरणस्वरूप, अपभ्रंश में विकसित दोहा और चौपाई जैसे छन्द आगे चलकर संत साहित्य और भक्ति काव्य में व्यापक रूप से प्रयुक्त हुए। कबीर के दोहे और तुलसीदास की चौपाइयाँ इसी परम्परा का विकसित रूप हैं। इस निरन्तरता के कारण प्राचीन दार्शनिक और नैतिक विचार नई भाषाओं में रूपान्तरित होकर जीवित बने रहे।

(iii) काव्य और छन्द-परम्परा :

अपभ्रंश साहित्य ने भारतीय काव्य और छन्द-परम्परा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। दोहा, चौपाई जैसे छन्दों में संक्षिप्तता, लयात्मकता और भावात्मक तीव्रता का संतुलित संयोजन मिलता है। इन छन्दों की गेयता के कारण वे लोकमानस में सहज रूप से स्वीकार किए गए। आगे चलकर इसी छन्द-परम्परा ने लोककाव्य और संत साहित्य को गहराई प्रदान की। कबीर, रैदास और तुलसीदास जैसे संत कवियों की रचनाओं में अपभ्रंश से विकसित छन्दों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ गूढ़ दार्शनिक विचार सरल और प्रभावशाली काव्य-रूप में अभिव्यक्त हुए।

6. समग्र मूल्यांकन के रूप में यह स्पष्ट होता है कि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं ने भारतीय ज्ञान-परम्परा को केवल शास्त्रीय ग्रन्थों और विद्वानों की सीमित दुनिया तक सीमाबद्ध नहीं रहने दिया, बल्कि उसे सामान्य जन के जीवन-अनुभव से जोड़ा। इन भाषाओं के माध्यम से नैतिकता, अहिंसा, करुणा और वैराग्य जैसे मूल्य केवल सैद्धान्तिक उपदेश न रहकर दैनिक जीवन की आचार-संहिता बन गए। उदाहरणतः बौद्ध और जैन परम्पराओं में करुणा, अहिंसा और संयम के सिद्धान्त पालि और प्राकृत के माध्यम से गृहस्थों, व्यापारियों और स्त्रियों तक पहुँचे और उनके व्यवहार का अंग बने।

इसी प्रकार प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं तक की निरन्तर यात्रा यह स्पष्ट करती है कि भारतीय संस्कृति में भाषिक स्तर पर किसी प्रकार का विच्छेद नहीं हुआ। विचार, मूल्य और ज्ञान एक भाषा से

दूसरी भाषा में रूपान्तरित होते हुए निरन्तर प्रवाहित होते रहे और जीवंत बने रहे। इस भाषिक और सांस्कृतिक निरन्तरता ने भारतीय ज्ञान-परम्परा को स्थायित्व, व्यापकता तथा जनसापेक्षता प्रदान की।